मन्त्रमहायोग

शब्दब्रह्म से परब्रह्म

श्री विद्या साधना पीठ

वाराणसी

मन्त्रमहायोग

शब्दब्रह्म से परब्रह्म

दत्तात्रेयानन्दनाथ

(सीताराम कविराज)
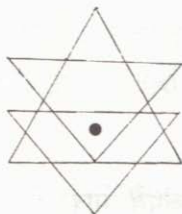
श्रीविद्या साधना पीठ

वाराणसी

श्री स्मरणम्

योग शब्द बहुत व्यापक है। इसका अर्थ है मिलना या मिलाना। व्यवहार में भी इसी का प्रयोग होता है। जैसे—एक वस्तु में दूसरी वस्तु का मिश्रण भी 'योग' कहा जाता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक 'क्षेत्र' में भी जीव का ब्रह्म से मिलना या ब्रह्म में जीव को मिलना, इसे 'यौग' कहते हैं।

आध्यात्मिक क्षेत्र में योगों की संख्या अनगिनत है। गीता के अठारह अध्यायों में अठारह योग हैं, एवं योग वशिष्ठ आदि ग्रन्थों में अनेक योगों की चर्चा है। वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का स्थान आध्यात्मिक क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। 'योग-शिखा' उपनिषद् में महायोग की चर्चा है और महायोग के चार रूप का वर्णन है।

मन्त्रो लयो हटो राजायोगोऽन्तर भूमिका।

एक एव चतर्धायं महायोगोऽभिधीयते ।।

मन्त्र, लय, हठ, राज यह महायोग के ही चार प्रकार हैं और यह अन्तर भूमिका है या अन्तर्याग है। इन चार महायोगों में मन्त्र महायोग का स्थान सर्वोपरि है। यही इस पुस्तिका का विषय है। पीठ द्वारा इस प्रकाशित **श्रीविद्या एवं श्रीयंत्र** पुस्तक में तंत्रों में वर्णित वहिर्याग के रूप का वर्णन किया गया है। यह मंत्र महायोग अन्तर्याग का स्वरूप है। इसे ही मन्त्र महायोग कहते

हैं। तंत्रशास्त्र में इसकी त्रिपुटी इस प्रकार है—**मंत्र, मन्त्रेश्वर, मंत्रमहेश्वर**।

प्रारम्भिक काल में द्वैतभाव से बैखरी वाणी से उच्चारित होने से **'मंत्र'** कहा जाता है। द्वैताद्वैत भाव में मध्यमा वाणी में स्वयं उच्चारित होता है। तो **'मंत्रेश्वर'** संज्ञा हो जाती है एवं सुषुम्ना विकास में 'दृढ़ विमर्श समावेश में पश्यन्ती वाणी से शब्द-तन्मात्रा के रूप में प्रश्पुरित 'मन्त्रमहेश्वर' कहा जाता है। पुनः यही मंत्र साधक को शिवत्व प्रदान करके शान्त निरञ्जन रूप से साधक के चित्त के साथ निष्कल रूप में परिणत हो जाता है। अतः मंत्र शिवधर्मी कहे जाते हैं। जैसा कि स्पन्दकारिका में कहा गया है—

तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्तरूपाः निरञ्जनाः ।
सह साधख चित्तेन तेनैते शिवधर्णिः ।।

प्रारम्भिक साधना काल से सिद्धावस्था पर्यन्त मान्त्रिक क्रिया का ही प्राधान्य है। एतदर्थ तन्त्रागम-साधना को 'मंत्रयोग' कहा जाता है।

शब्दब्रह्म से परब्रह्म

द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परञ्च तत् ।
शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माणि गच्छति ।।

निर्गुण, निर्विकार, निराकार, अप्रतर्क्य, अनिर्देश्य मनोवाचामगोचर, सूक्ष्मानिसूक्ष्म तत्त्व की बुद्धि, मन, इन्द्रिय आदि

मायिक स्थूल जड़ पदार्थों से उपलब्धि असम्भव है। अतः शब्दब्रह्म में निष्णात ही परब्रह्म को प्राप्त करता है।

शब्दब्रह्म का स्वरूप

आगम शास्त्रों में शिव तत्त्व ही 'परब्रह्म' है और शक्तितत्त्व 'शब्द ब्रह्म' है। शक्ति उपासना से शिवत्थ प्राप्ति, शब्द ब्रह्म से परब्रह्म की प्राप्ति है। प्रकाश-विमर्श, बिन्दु-नाद, आदि संज्ञाओं से तन्त्रान्तरों में इस विषय का विशद विवेचन किया गया है। दक्षिणामूर्तिस्तोत्र की मानसोल्लास-कारिका के अनुसार—

बिन्दुनादौ शक्तिशिवौ शान्तातीतौ ततः परम् ।
षटत्रिशत्तत्त्वमित्युक्तं शैवागमविशारदैः ।।

प्रकाश, बिन्दु, शिव ये परब्रह्म के पर्याय हैं। निर्गुण, निराकार ब्रह्म में 'सिसृक्षा' सृजन करने की इच्छा ही प्रकाश से विमर्श, बिन्दु से नाद, शिव से शक्ति का प्रादुर्भाव है। इसी को इच्छाशक्ति, चिच्छक्ति, महाशक्ति आदि नामों से प्रतिपादित किया है। जब शक्ति का वाणीरूप में विस्तार होता है इसको 'शक्तिस्फार' कहते हैं। सर्वप्रथम एक नादात्मक अनच्क हकार की उत्पत्ति होती है। यही शब्द ब्रह्म है। इसीसे परा, पशयन्ती, मध्यमा, बैखरी वाणियों का आकारादि क्षकारान्त वर्णमाला के रूप में प्राकट्य होता है। इसी से समस्त वाङ्मय, अनन्तकोटि शास्त्रों की रचना होती है। **'ज्ञानाधिष्ठानं मातृका'** शिवसूत्र के अनुसार समस्त ज्ञान की अधिष्ठाती 'मातृका' वर्ममाला है। इन्हीं मातृका

के शब्दों से दृश्यमान समस्त प्रपञ्च का निर्माण होता है। तन्त्र आगमों की दार्शनिक भूमि छत्तीस तत्त्वों पर आधारित है। 'षड्त्रिंशतत्त्वानि विश्वम्' (प.क. सूत्र) इसका तात्त्विक विवेचन 'परात्रीशिका' में विस्तृत रूप से किया गया है। वर्ण विकास क्रम और शिव से पृथ्वी पर्यन्त किस वर्ण से किस तत्त्व का आर्विभार्व हुआ। यह पूर्ण रूप से वर्णन करके शेष में कहा गया है—

अ-मूल तत्क्रमाज्ज्ञेया क्षान्ता सृष्टिरूदाहृता।
सर्वेषामेव मन्त्राणां विद्यानाञ्च यशस्विनि ।।
इयं योनिः समाख्याता सर्वतन्त्रेषु सर्वदा ।।

तन्त्र सद्भाव में कहा गया है—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्माका शिवे ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ।।
या सा मातृका लोके परतेजः समन्विता ।
तया व्याप्तमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनात्मकम् ।।

मातृका के वर्णों से समस्त मन्त्रों का निर्माण होता है, ये शक्त्यात्मक हैं, मातृ का ही शक्ति है और शक्ति शिवात्मिका है। अतः शिव-शक्ति तेज से समन्वित इस मातृ का से ही आब्रह्मभुवनात्मक समस्त विश्व व्याप्त है।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि शब्द राशि ही शक्ति है, इसे ही शब्द ब्रह्म भी कहते हैं, अतः शब्द ब्रह्म रूप शक्ति

की उपासना से परब्रह्म रूप शिव की प्राप्ति होती है। इस प्रकार मंत्र योग शब्द ब्रह्म से परब्रह्म की प्राप्ति का साधन है।

प्राय: सभी शास्त्रीय साधन पद्धतियों में मन को एकाग्र करने को प्रक्रिया का वैशिष्ट्य है।

संकल्प विकल्पात्मकं मनः

संकल्प माने 'यह हो' और विकल्प माने 'यह न हो'। यह होना चाहिए और यह नहीं होना चाहिए इत्यादि हलचल ही मन का रूप है। इस मन की वृत्ति तीन प्रकार की है—**चञ्चल, मूढ़** और **एकाग्र**। निरन्तर सांसारिक विषयों का चिन्तन करने से मन चञ्चल अशान्त हो जाता है और उस उलझन को सुलझाने में व्यग्र हो जाता है एवं अधिकाधिक उलझता चला जाता है यही 'आधि' कहलाता है। यह मानसिक रोग है। यही 'डीपरेशन' है। वर्तमान में बहुत लोग इसके शिकार हो गए हैं। यही मन की **चञ्चल वृत्ति** है। मानव इससे परेशान हो जाता है और इससे छुटकारा पाने के लिए मादक द्रव्यों का सेवन करके मन को शान्त करने का प्रयास करता है। यह मन की **मूढ़ वृत्ति** है। वह मन की चञ्चल वृत्ति को शान्त करने के लिये नशाखोरी से शारीरिक रोगों का शिकार हो जाता है। इस प्रकार आधि-व्याधि, शोक-संताप से ग्रसित होकर जीवन नष्ट कर लेता है। आजकल जो आत्महत्याएँ होती हैं उसका मूल कारण यही है। श्रीमद्भागवत् में कहा गया है—**मनः परं कारणमामनन्ति संसार चक्रं परिवर्तयेक्ष्यः**।

संसार चक्र को परिवर्तन करने में मन ही परम कारण है। मन को जीतने वाला देव-देव हो जाता है।

मनोवशोऽन्ये ह्यभवन् सम देवा

मनश्च नान्यस्य वशं स्मेति।

भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्

युञ्जयाद् वशे तं स हि देवदेवः ।।

मन वश में होने पर देवता भी वश में हो जाते हैं। मन किसी के वश में नहीं आता है। यह मन सभी बलवानों से भी बड़ा बलवान् है। इस मन को जो वश में कर लेता है वह देवताओं का भी देवता हो जाता है। शास्त्रों के अनुसार मन को वश में करना बड़ा दुरुह है।

इसके निवारण के लिए मन की एकाग्रता, मनोनिग्रह एकमात्र उपाय है। सभी साधना में मन को एकाग्र करने की विधि है। गीता में अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा मन को एकाग्र करने की विधि बताई गई है। पातंजलि योगसूत्र के अनुसार—**'योगश्चित वृत्ति निरोधः'**। चित्त या मन की वृत्तियों का निरोध ही 'योग' है।

योगशास्त्र में वर्णित चार महायोगों में मंत्रमहायोग सर्वोत्तम है। अवलम्बन की आवश्यकता जैसे मन की व्यग्रता को शान्त करने के लिए मादक द्रव्यों का सेवन किया जाता है तो क्षणिक लाभ तो होता है परन्तु इसके घोर परिणाम होते हैं। परन्तु मंत्रयोग मन के अवलम्बन के लिए मंत्र जप देता है। **मंत्रों में अचिन्त्य**

शक्ति है। मन और मंत्र का युद्ध होता है। मंत्र अपनी अचिन्त्य शक्ति से मन को परास्त कर देता है।

मन की विषयाकाराकारित वृत्ति नष्ट हो जाती है और मंत्रमय वृत्ति हो जाती है। यही मन की एकाग्रवृत्ति है। इससे लौकिक और पारलौकिक समस्त कार्य सम्पन्न होते हैं।

मंत्र महामणि विषय व्याल के।
मेटत कठिन कुअङ्ग भाल के।।

मंत्रयोग से भाग्य भी बदल सकता है। चिता और चिन्ता ये दो जलाने वाली है। चिता मरे को जलाती है और चिन्ता जीवित को जलाती है। यदि चिन्ता में मंत्र जप किया जाये तो, चिन्ता ही 'चिन्तामणि' हो जाती है। इसी विषय को इस पुस्तक में स्वल्प रूप में लिखा गया है परन्तु इसमें बहुत कुछ कहना और करना आवश्यक है। इसके लिए इस पुस्तक द्वारा यदि मंत्रयोग की ओर लोग की रुचि बढ़ी तो मैं स्वयं को सफल समझूँगा।

इस पुस्तक के सम्पादन में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की दर्शन एवं धर्म विभाग की शोध छात्रा ममता साधुवाद की पात्र है एवं तारा प्रेस के संचालक श्री रविप्रकाश पंड्या मुद्रण प्रकाशन में त्वरित गति से कार्य करने के लिए भूरि-भूरि धन्यवाद के पात्र हैं।

श्रीगुरुचरणसरोजरेणु
दत्तात्रेयानन्दनाथ

मन्त्रमहायोग

भारतीय संस्कृति के विशाल साहित्य-सिन्धु के मन्थन से समुद्भूत आध्यात्मिक साधना-सुधा ही अजर-अमर कर देनेवाली वास्तविक सुधा है। इस पीयूष-रस से परिप्लुत गम्भीर चिन्तन की परिणति का सुधा-स्रोत 'योग' नाम से परिलक्षित होता है।

योग-मार्ग की विविध विधाओं में मुख्यतः चार प्रकार के योगों की प्रधानता है—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग।

राजयोग—राजयोग को यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि, इन अष्ट क्रियाओं के कारण 'अष्टांग-राजोयग' कहते हैं। इसमें यम, नियमों का पालन आवश्यक है। यह चिरकालिक साधना है। सांसारिक समस्त कार्यों को इसमें गौण करना पड़ता है। अतः सर्वसाधारण सांसारिक व्यक्ति के लिए वह दुर्लभ साधना है।

हठयोग—हठपूर्वक नेति, धौति, आसनादि के द्वारा शारीरिक क्षमता में वृद्धि होती है एवं यत्किंचित् स्वास्थ्यलाभ की दिशा में उपलब्धियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, मानसिक या आध्यात्मिक लाभ प्रायः सामान्य रहता है। इसकी कठिन साधना-प्रक्रियाओं का सम्पादन अनुभवी योगी गुरु के निर्देशन में किया

जाना परमावश्यक है, क्योंकि किंचिन्मात्र भी असावधानी से विपरीत फल की आशङ्का बनी रहती है।

लययोग—योगतारावली में लययोग की साधना के सवालाख भेद-प्रभेद वर्णित हैं, उनमें नादानुसंधान-समाधि ही मान्यतम लययोगों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसका निरन्तर अजस्र रूप से अभ्यास सापेक्ष है, न्यूनतम काल का भी व्यवधान होने से यथार्थ फल की प्राप्ति दुष्कर हो जाती है। अतः सांसारिक कर्मों में व्यावृत जन-मानस के लिये यह विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होता।

मन्त्रयोग—परमशिवप्रोक्त तन्त्र-आगमों की साधना विधि का नाम मन्त्रयोग है। भारतीय दर्शनों ने निगम (वेद), आगम (तन्त्र) को ही स्वतः परम प्रमाण माना है। ईश्वर के निःश्वासभूत होने से **'वेदाः प्रमाणम्'** और शिवप्रोक्त होने से **'आगमाः प्रमाणम्'** इस प्रकार से कहा गया है। आगम शब्द का अर्थ है—**'आगच्छति बुद्धिमारोहति यस्मादभ्युदयनिःश्रेयसोपायः स आगमः'**। जिसके द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक कल्याणकारी उपायों का यथार्थ ज्ञान हो वह आगम शब्द से निरूपित होता है। तन्त्र शब्द भी आगम अर्थ का ही वाचक है, इसका शब्दार्थ है—

तनोति विपुलानर्थास्तत्त्वमन्त्रसमाश्रितान् ।
त्राणं च कुरुते पुंसां तेन तन्त्रमिति स्मृतम् ।।

मन्त्र तत्त्व का विस्तृत विवेचन एवं उसके तात्पर्यार्थ-साधना-प्रक्रियाका पूर्णरूप से विपुल प्रतिपादन करता है तथा मानव-जाति का सभी प्रकार के भयों से परित्राण करता है, अत: उसकी तन्त्र-संज्ञा होती है।

तन्त्रागम के विशाल साहित्य की रहस्यमयी साधना-विधि का नाम ही मन्त्रयोग है।

मन्त्र और मन्त्रशक्ति

मननात् त्रायत इति मन्त्रः, मननत्राणधर्माणो मन्त्राः ।

मनको मननीय शक्ति प्रदान (एकाग्र) करके जपके द्वारा समस्त भयों का विनाश करके पूर्ण रक्षा करनेवाले शब्दों को मन्त्र कहा जाता है। मन्-त्र—ये दो शब्द इसमें हैं। 'मन्' शब्द से मन को एकाग्र करना, 'त्र' शब्द से त्राण (रक्षा) करना जिनका धर्म है और जप से जो अभीष्ट फल प्रदान करे, वे मन्त्र कहे जाते हैं। जैसे वेदान्त सिद्धान्त है कि **'जीवो ब्रह्मैव नापरः'** 'जीव ही ब्रह्म है दूसरा नहीं'। उसी प्रकार तन्त्र-आगमों का सिद्धान्त है—**'आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्'**—आनन्द ही ब्रह्म का रूप है, **'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्'** आदि श्रुतियाँ भी इसी आगम-सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है। परमानन्दघन परात्पर परमेश्वर पूर्ण ब्रह्म ने अपनी अमोघ संकल्प (इच्छा) शक्ति से **'एकोऽहं बहु स्याम्'**—मैं अकेला हूँ बहुत हो जाऊँ, इस विचित्र विश्व की रचना करके इसी में प्रवेश

किया—**'तत् सृष्ट्वा तदनु प्राविशत्'**। इसी तरह तन्त्र-आगमों के भी दार्शनिक सिद्धान्त हैं। यहाँ ब्रह्म का शिव नाम से व्यपदेश किया गया है। सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान् परमशिव संसाररूपी क्रीडा करने के लिये अपनी सर्वज्ञता और सर्वकर्तृताशक्ति को संकुचित करके मनुष्य-देह का आश्रयण करता है—**'मनुष्यदेहमाश्रित्य छन्नास्ते परमेश्वरा:'**—मनुष्य देह में प्रच्छन्नरूप से परमेश्वर ही विद्यमान है, यही गीता-शास्त्र का कहना है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।। (९।११)

यह चराचरात्मक समस्त विश्व उसकी क्रीडा है, केवल लीलामात्र है—**'क्रीडात्वेनाखिलं जगत्', लीलामात्रं तु केवलम्'**। अत: यहाँ सिद्ध होता है कि वह परमशिव अपनी सर्वज्ञता एवं सर्वकर्तृता-शक्ति को संकुचित करके मनुष्यदेह में अल्पज्ञता और अल्पकर्तृता धारण करके क्रीडा कर रहा है। जब वह अपनी शक्ति को संकुचित करता है, तब सुख-दु:ख, राग-द्वेष आदि सांसारिक धर्मो से अभिभूत हो जाता है। इसी से आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता, दरिद्रता, अहन्ता, ममता, संकल्प-विकल्प आदि आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक संतापों से संतप्त-दु:खित हो भय-विह्वल होकर इनसे मुक्ति चाहता है। बस इसी के लिये शास्त्रों में एवं शास्त्रतत्त्वज्ञ योगीन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्ध महात्माओं ने विविध प्रकार की साधना-उपासनाओं के विविध विधानों का प्रतिपादन किया है। श्रीशिव-निर्मित तन्त्र-

आगम-शास्त्रों में स्वात्मबोध एवं स्वरूप-ज्ञान तथा सांसारिक भयङ्कर संतापों की निवृत्ति के लिये मन्त्र-साधना को ही सर्वोत्तम मान्यता दी गयी है। तन्त्रागम के गम्भीर सिद्धान्तों के तात्त्विक एवं विवेचनात्मक ग्रन्थ 'महार्थमञ्जरी' में मन्त्रस्वरूप का सुन्दर संकलन किया गया है—

मननमयी निजविभवे निजसंकोचभये त्राणमयी ।
कवलितविश्वविकल्पा अनुभूतिः कापि मन्त्रशब्दार्थः ।।

सर्वज्ञता-सर्वकर्तृता-शक्ति-सम्पन्न अपने विभव (ऐश्वर्व) का बोध कराना तथा अल्पज्ञता एवं अल्पकर्तृतारूपी संकुचित शक्ति से समुत्पन्न दीनता, हीनता, दरिद्रता आदि सांसारिक संतापों से मुक्त करना और कुत्सित वासनाओं के संकल्प-विकल्पों का 'ग्रास' (विनाश) करके 'शिवोऽहं' की भावना से भावित अनुभूति होना ही मन्त्र-शब्द का तात्पर्यार्थ, स्वरूप या प्रयोजन है। इसी भाव को और स्पष्ट किया गया है—

मोचयन्ति च संसाराद्योजयन्ति परे शिवे ।
मननत्राणधर्मित्वात्तेन मन्त्रा इति स्मृताः ।।

नेत्र-तन्त्र में बहुत विस्तार से मन्त्र के तात्त्विक रहस्यों का विवेचन किया गया है। सात करोड़ मन्त्र शिव के मुख से विनिर्गत हुए हैं—**'सप्तकोटिमहामन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः'**। वर्णमाला के 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास अक्षरों को 'मातृका' कहते हैं। इन मातृका-वर्णों से ही समस्त मन्त्रों का निर्माण हुआ है।

मातृका शब्द का अर्थ है माता या जननी। अतः समस्त वाङ्मयकी यह जननी है। ये समस्त मन्त्र वर्णात्मक हैं और मन्त्र शक्ति-स्वरूप हैं। यह मातृकाकी ही शक्ति है और वह शक्ति शिव की है, अतः समस्त मन्त्र साक्षात् शिवशक्ति-स्वरूप हैं। यही भगवान् शङ्कर पार्वती से कहते हैं—

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।

शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ।।

मन्त्र अचिन्त्य शक्तिसम्पन्न होते हैं, इनके सामर्थ्य की इयत्ताका निर्धारण नहीं किया जा सकता। इसीलिये कहा गया है—**'मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता'** (परशुरामकल्पसूत्र), **'अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधिप्रभावः'**। इन्हीं मन्त्रात्मक वर्णों से समस्त विश्व का सृजन हुआ है—**'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे इति श्रुतिः'**। आगम-दर्शन की मूल भित्ति शिवादि-क्षिति-पर्यन्त छत्तीस तत्त्वोंपर आधारित है। ये तत्त्व मातृका के छत्तीस अक्षरों पर आधारित हैं। इन्हीं तत्त्वों से दृश्यमान समस्त चराचरात्मक विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय आदि होते हैं। अतः मन्त्रात्मक अक्षरों को शब्दब्रह्म कहा जाता है। संसार का व्यवहार भी शब्दों के द्वारा ही होता है, इसलिये शब्द-शक्ति सर्वोपरि मानी गयी है। भगवान् परमशिव ने इन्हीं शब्दों से चमत्कारपूर्ण समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाले मन्त्रों की रचना करके समस्त सांसारिक जीवों पर कारुण्य-पूर्ण अनुग्रह किया। इन मन्त्रों की साधना से सम्पूर्ण अभीष्टों की सिद्धि सरलता से की जा सकती है। गोस्वामी

श्रीतुलसीदास जी ने भी कहा है—**'मन्त्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के'**।। यहाँ तक कि इनसे भाग्य भी बदल जाता है। इनकी साधना-विधिवत् शास्त्रानुमोदित करनी चाहिये।

तन्त्रों में मन्त्रों के स्वरूप का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। उसमें तीन जातियाँ एवं चार प्रकार मुख्य हैं। इनका 'शारदातिलक' तन्त्र में इस प्रकार प्रतिपादन किया गया है—

पुंस्त्रीनपुंसकात्मनो मन्त्राः सर्वे समीरिताः ।
मन्त्राः पुंदेवता ज्ञेया विद्या स्त्री देवता स्मृता ।।

पुरुष, स्त्री और नपुंसक—ये तीन जातियाँ मन्त्रों की मानी गयी हैं। मन्त्र पुरुष—देवतात्मक होते हैं एवं महाविद्या, श्रीविद्या आदि विद्याओं के मन्त्र स्त्री-देवतात्मक कहे जाते हैं। इनके चार प्रकार नित्यातन्त्र में इस प्रकार वर्णित हैं—

मन्त्रा एकाक्षराः पिण्डाः कर्तर्यो द्वयक्षरा मताः ।
वर्णत्रयं समारभ्य नववर्णावधिबीजकाः ।।
ततो दशार्णमारभ्य यावद्विंशतिमन्त्रकाः ।
अत ऊर्ध्वं गता मालास्तासु भेदो न विद्यते ।।

'एक अक्षरवाले मन्त्र की 'पिण्ड' संज्ञा है, एवं दो अक्षर की 'कर्तरी', तीन अक्षर से नौ अक्षर तक के मन्त्रों को 'बीज' मन्त्र कहा जाता है, दस अक्षर से बीस अक्षरतक 'मन्त्र' नाम

होता है। बीस अक्षर से अधिक संख्या वाले मन्त्रों को 'माला' मन्त्र कहते हैं'।

साधक के नाम के साथ इन मन्त्रों के मित्र, शत्रु, साध्य, सिद्ध, सुसिद्ध आदि सम्बन्ध होते हैं। अत: मेलापक-प्रक्रिया से विचार करके मन्त्र ग्रहण करने से ही अभीष्ट-सिद्धि होती है। कामना-परक मन्त्रों का अविचारित रूप से अनुष्ठान करना विपरीत फलदायक भी हो सकता है। अत: **'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ'**—इस गीतोक्त वचन के अनुसार शास्त्रों के प्रमाण से कर्तव्याकर्तव्य निर्धारण करना आवश्यक है। अत: मन्त्र-साधना तन्त्रशास्त्रप्रतिपादित विधानानुसार करने से ही ऐहिक और पारलौकिक अभीष्ट-सिद्धि होती है।

तन्त्रशास्त्र में कुछ मन्त्र, विद्याएँ कलियुग में सिद्ध मानी गयी हैं, वे सबके लिये उपयोगी हैं, उनमें सिद्धारि आदि मेलापक विचार आवश्यक नहीं है।

मन्त्र-साधन-प्रक्रिया

तन्त्र-आगम-शास्त्र में वर्णित लक्षणों से युक्त गुरु से विधिवत् मन्त्र-दीक्षा-ग्रहण करना चाहिये। उस मन्त्र को अपने इष्टदेव का स्वरूप ही मानना चाहिये। देवताओं का स्वरूप मन्त्रात्मक ही होता है। **'मन्त्रा वर्णात्मकाः सर्वे सर्वे वर्णाः शिवात्मकाः'**। श्रीगुरु-मुखारविन्द से नि:सृत मन्त्ररूप इष्टदेव को स्वकीय कर्णों के द्वारा हृदय-प्रदेश में विराजमान करके निरन्तर

उसकी परिचर्या में संलग्न हो जाना चाहिये। इस साधना के तीन अङ्ग मुख्य हैं—**नित्यकर्म, नैमित्तिककर्म** और **काम्यकर्म**।

नित्यकर्म—नित्यकर्म में प्रात: स्मरण:, शौच, दन्तधावन, स्नान, संध्या, पूजा, स्तोत्रपाठ आदि का विधान शास्त्र से या गुरु से सम्यक् प्रकार से जानकर उसका सम्पादन करना चाहिये। प्रात:काल से रात्रि में शयनपर्यन्त सभी क्रियाएँ विधिपूर्वक सम्पन्न होनी चाहिये, नित्यकर्मों का पालन करना मन्त्र-साधक के लिये परमावश्यक है। नित्यकर्म का लोप होने से प्रत्यवाय होता है, अत: प्रायश्चित्तका विधान है। मनुष्य स्वभाव-सुलभ प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटवादि दोषों से यदि नित्यकर्म लोप हो जाय तो प्रायश्चित करना परमावश्यक है। वैदिक विधानों के अनुसार मन्त्रयोग में चान्द्रायण व्रतादिकों की तरह कठोर विधान नहीं है, केवल कर्मवैगुण्य के अनुसार लाघव-गौरव देखकर मूल मन्त्र-जप-संख्याका ही न्यूनाधिक रूप से सरल विधान है। जैसे संध्यालोप होने से मूल मन्त्र का शत-संख्यात्मक एक माला तथा नैमित्तिक कर्मलोप में सहस्र संख्यात्मक दस माला का विधान है।

नैमित्तिककर्म—यह कर्म विशेष पर्वों पर किया जाता है। परशुरामकल्पसूत्र में पाँच मुख्य पर्व माने गये हैं, पञ्चपर्वों में विशेषार्चा हैं। रात्रिव्यापिनी कृष्णाष्टमी, कृष्णचतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति—इन पञ्च पर्वोपर दिन में व्रत रखकर रात्रि में विशेष पूजा-सामग्री से अर्चन करने का विधान है एवं गुरु का जन्मदिन, व्याप्तिदिन, स्वविद्याग्रहण-दिन, पुष्यार्क, नवरात्र आदि

पर्वोपर अपनी शक्ति के अनुसार व्रतपूर्वक यथाविभव विशेष उत्सव का आयोजन करना चाहिये। इस नित्य और नैमित्तिककर्म करने वाले साधक के सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

काम्यकर्म—काम्यकर्म उसे कहते हैं जो विशेष कामना-पूर्ति के लिये किया जाता है। अपने मूल मन्त्र का पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण करने पर जब मन्त्र-चैतन्यका लक्षण उत्पन्न हो जाय तो भिन्न-भिन्न कामनाओं के लिये पृथक्-पृथक् वस्तुओं से होम करने का विधान शास्त्रों में वर्णित है, उन-उन वस्तुओं से होम करने से तत्-तत् कामनाएँ पूर्ण होती हैं। परन्तु काम्यकर्म करने का शास्त्रों में निषेध ही किया गया है—

शुभं वाप्यशुभं वापि काम्यं कर्म करोति यः।
तस्यारित्वं व्रजेन्मन्त्रस्तस्मात्र तत्परो भवेत्॥

अर्थात् 'शुभ या अशुभ अभिचारादि—काम्य कर्म जो करता है, उसके लिये वही मन्त्र शत्रु-भावापन्न हो जाता है। इसलिये काम्यकर्म में तत्पर नहीं होना चाहिये'। कोई अत्यावश्यक कार्य हो तो उसके लिये कदाचित् कर लेने का विधान है। अपने मन्त्र का नित्य-नैमित्तिक कर्म करने मात्र से साधक का जिसमें कल्याण निहित है, उसे मन्त्र का अधिष्ठाता देवता स्वयं सम्पादन करता रहता है। अपने इष्टदेव के सर्वात्मना-समर्पण—शरणागत होकर देवता-प्रीत्यर्थ कर्म करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं, ऐसा शास्त्र में लिखा गया है—

निष्कामो देवतां नित्यं योऽर्चयेद् भक्तिनिर्भरः।
तामेव चिन्तयन्नास्ते यथाशक्ति मनुं जपन्।।
सैव तस्यैहिकं भारं वहेन्मुक्तिं च साधयेत्।
सदा संनिहिता तस्य सर्वं च कथयेत सा।।
वात्सल्यसहिता धेनुर्यथा वत्समनुव्रजेत्।
तथानुगच्छेत् सा देवी स्वं भक्तं शरणागतम्।।

निष्काम भक्तिभावसहित जो इष्ट देवता का अर्चन करता है और निरन्तर उसका ही चिन्तन करता हुआ यथाशक्ति मन्त्र का जप करता है, उसके सांसारिक जितने कार्य हैं, उन सबका वहन भगवती स्वयं करती हैं और अन्तमें मोक्ष-प्रदान भी कर देती हैं। इतना ही नहीं, सदा उसके संनिहित रहती हैं और सब कुछ बताती रहती हैं। वात्सल्यभाव से युक्त होकर जैसे धेनु अपने बछड़े के पीछे रहती है, उसी तरह वह वात्सल्यमयी माता भगवती शरणागत भक्त के कल्याण करने में निरन्तर तत्पर रहती हैं। इसलिये गीता में भी लिखा है—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।
(२।४०)

निष्काम कर्म करनेवाले का कभी क्रम-भङ्ग नहीं होता और कोई निषिद्ध कर्म की सम्भावना भी नहीं रहती। निष्कामकर्म का स्वल्परूप आचरण करने से महाभय से परित्राण होता है। अतः

मन्त्र-चैतन्य के लिये पुरश्चरणादि अनुष्ठान के बाद मन्त्र-सिद्धि हो जाने पर ऐहिक और पारलौकिक समस्त कार्य स्वयं सिद्ध होते रहते हैं।

मन्त्रसिद्धि के लिये पञ्चाङ्ग-पुरश्चरण अत्यावश्यक हैं एवं अन्य प्रकार से ग्रहण आदि में संक्षेप-पुरश्चरणों का भी शास्त्रों में विधान किया गया है तथा औषधियों आदि के प्रयोग से भी सरलता से मन्त्र-सिद्धि हो जाती है। पुरश्चरण नहीं करने से मन्त्र सिद्धि प्रद नहीं होता, लिखा है—

जीवहीनो यथा देहः सर्वकर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरणहीनोऽपि तथा मन्त्रो न सिद्धिदः ।।

जैसे जीवहीन देह कोई कर्म करने में समर्थ नहीं होता, वैसे ही पुरश्चरण के बिना मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता, अतः भोग एवं मोक्ष दोनों चाहने वाले साधक को पुरश्चरण करना अनिवार्य है। कुछ महाविद्याएँ श्रीविद्या आदि में पुरश्चरण आवश्यक नहीं है। क्योंकि ये विद्याएँ मोक्ष-प्रधान होती हैं, भोगों की इनमें अप्रधानता होती है—'**भोगा भवन्ति चेद् भवन्तु मा भवन्ति मा भवन्तु**'। भोगों की प्राप्ति होनी ठीक है, न हो तो उनके लिये विशेष अभिलाषा नहीं होती। वैराग्यवान् साधक इन महाविद्याओं का अनुष्ठान मोक्षैकमात्र-प्राप्ति के लिये करते हैं। अन्य मन्त्रों का पुरश्चरण तो परमावश्यक है। पुरश्चण करने पर भी मन्त्रसिद्धि के लक्षण उत्पन्न न हों तो द्रावण-बोधनादि मन्त्र के संस्कार करने चाहिये। इनसे मन्त्र सिद्धि देनेवाला हो जाता है।

द्रावणं बोधनं वश्यं पीडनं पोषशोषणम् ।

दाहनं च बुधः कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः ।।

इन संस्कारों के करने पर भी यदि मन्त्र-सिद्धि न हो तो उस मन्त्र का परित्याग कर देना चाहिये, ऐसा शास्त्रों का मत है। महाविद्याओं के परित्याग का विधान नहीं है।

मन्त्रसिद्धि के लक्षण

तन्त्रान्तरों में मन्त्रसिद्धि के तीन प्रकार के लक्षण बताये गये हैं—उत्तम, मध्यम और अधम।

उत्तम लक्षण—'मनोरथानामक्लेशः सिद्धेरुत्तम-लक्षणम्'—बिना क्लेश के सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। (साधना करने वालों के शुद्ध भाव, पवित्र विचार, सत्संकल्प और श्रेष्ठ मनोरथ होते हैं।) अतः सिद्ध हुए मन्त्र के द्वारा सदिच्छा पूर्ण हो जाती हैं एवं अकाल मृत्यु का भय दूर हो जाता है। देवता के दर्शन होते हैं एवं और भी अनेक प्रकार की यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

मध्य लक्षण—'ख्यातिर्वाहनभूषादिलाभः सुचिरजीवनम्०'—यश, वाहन, भूषण, आरोग्य, रोगविषापहरण शक्ति, पाण्डित्य, कवित्व, वैराग्य, मुमुक्षुत्व, सर्ववश्यता, त्यागभावना, अष्टङ्गादि योगों का अभ्यास, भोगों की नगण्य इच्छा, समस्त प्राणियों में दयाभाव सर्वज्ञतादि गुणों का उदय आदि मध्यम सिद्धि के लक्षण हैं।

अधम लक्षण—ख्याति, वाहन, भूषण आदि वैभव की प्राप्ति तथा धन, पुत्र, दारादि लोकैश्वर्य की प्राप्ति—ये मन्त्रसिद्धि के अधम लक्षण हैं। यह साधक की प्रथम भूमिका है।

स्वल्प सिद्धियों से सावधानी

मन्त्रयोग-साधन में तत्पर साधक को मन्त्रप्रभाव जन्य कुछ स्वतः स्वल्प सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, किन्तु वे परम सिद्धि में बाधक होती हैं। **'अष्टाविंशतिधा शक्तिः'**, **'नवधा तुष्टिः'**, **'अष्टधा सिद्धिः'**—ये तीन प्रकार के अङ्कुश परम सिद्धि के अवरोधक होते हैं।

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः ।
दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वाङ्कुशस्त्रिविधः ।।

ऊह—उपदेश के बिना ही अपेक्षित अर्थ का ज्ञान होना ऊह-सिद्धि कही जाती है।

शब्दसिद्धि—प्रासङ्गिक शब्द-श्रवणमात्र से मुख्य अर्थ का बोध शब्दसिद्धि कही जाती है।

अध्ययन-सिद्धि—गुरु के साधारण उपदेश से शास्त्रों का बोध होना अध्ययन-सिद्धि है।

दुःख-विघात-सिद्धि—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक—इन तीन प्रकार के दुःखों का विघात होना दुःख-विघात-सिद्धि है।

सुहत्प्राप्ति-सिद्धि—किसी विशिष्ट व्यक्ति के सम्पर्क से अर्थ-प्राप्ति होना सुहत्प्राप्ति-सिद्धि है।

दान—विद्वान्, तपस्वी, सिद्धों के द्वारा प्राप्त अलौकिक क्रियाओं का ज्ञान दान-सिद्धि है।

योगशास्त्रानुसार ये आठ सिद्धियाँ लोक में तो सिद्धि-रूप हैं, परन्तु साधना-मार्ग में अग्रसर होने में अवरोधक होती हैं—**'ते समाधावपुसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः'**।

अतः इन स्वल्प सिद्धियों के जाल में न पडकर सावधान होकर अपनी साधना को आगे बढ़ाते रहना ही मुख्य-सिद्धि है। मन्त्रयोग में मानसिक जप में निरन्तर संलग्न रहना ही मुख्य भूमिका है।

'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिर्न संशयः ।

इस प्रकार मन्त्रयोग में अध्यवसाय-सम्पन्न साधक अनवरत साधना में संलग्न होने पर जब पूर्ण सिद्धि का अधिकारी बन जाता है, तब उसका मध्यम-धाम में प्रवेश होता है।

मध्यम धाम-प्रवेश

इस समय साधक का चित्त ही मन्त्र बन जाता है। प्रारम्भिक साधना-काल में वाचिक, उपांशु, मानसिक जप की स्थिति रहती है। इस अवस्था में चित्त ही मन्त्र हो जाता है। **'चित्तं मन्त्रः'**। शिवसूत्र में इसका विशद विवेचन है। इस अवस्था में मानसिक जप से ऊपर उठकर स्वयं अपने-आप चैतन्य सत्ता से सम्पर्क

से चित्त में जप होने लग जाता है। अब साधक को नाना प्रकार के चमत्कारिक अनुभव होते हैं और उस अद्वैत तत्त्व की गन्ध आने लग जाती है। **'शिवोऽहं'** की भावना विकासोन्मुख होने लगती है। यह सर्वज्ञत्व और सर्वकर्तृत्व शिवत्व-प्राप्ति का द्वार है—**'शैवीमुखमिहोच्यते'**। अपना लक्ष्य सामने दिखायी देने लग जाता है। द्वार में प्रवेश करने के बाद जैसे भवन के अन्तराल में जाने का मार्ग सुगम हो जाता है, वैसे ही शिवत्व-प्राप्ति की सिद्धावस्था भी सुलभ हो जाती है। तन्त्रशास्त्र के विशिष्ट ज्ञाता महामहोपाध्याय डॉ. गोपीनाथ कविराज जी ने भी अपने तन्त्रशास्त्र सम्बन्धी प्रायः समस्त निबन्धों में इस स्थिति का बहुधा उल्लेख किया है। तन्त्रागम साहित्य में भी विविध तन्त्रों में विविध प्रकार से विस्तृत विवेचन मिलता है।

शिवत्व-प्राप्ति

तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः ।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम् ।।
तत्रैव सम्प्रलीयन्ते शान्तरूपा निरञ्जनाः ।
सहाराधकचित्तेन तेन ते शिवधर्मिणः ।।

(स्पन्दकारिका २६-२७)

पूर्वोक्त स्थिति प्राप्त होने पर सर्वज्ञतादि बल से युक्त मन्त्र साधक के अधिकार में आ जाते हैं, जैसे देहधारी अपने करचरणादि इन्द्रियों का स्वेच्छा से संचालन कर सकता है, उसी

प्रकार मन्त्र भी उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करने लग जाते हैं, इस प्रकार चित्त में मन्त्र का निरन्तर मनन करते रहने से वे शान्त-रूप निरञ्जन शिवधर्मी मन्त्र साधक को शिवत्व प्रदान करके आराधक के चित्त के साथ वहीं पर लीन हो जाते हैं।

मन्त्रमहायोग—साधना करने वालों की तीन प्रकार की स्थितियों का विभिन्न तन्त्र-आगमों में विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। यथा साधक, सिद्धि, सिद्ध। इन्हीं का रूप द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत एवं भेद-भेदाभेद, अभेद है। प्रारम्भ में साधक का द्वैत-भाव या भेदभाव रहता है, जैसे पूज्य और पूजक, मैं पूजा करने वाला हूँ और इष्टदेव पूज्य हैं। इसी को द्वैतभाव कहते हैं। तदनन्तर पूर्वोक्त साधना के अनुसार सिद्धि-लाभ करता है और तब मानसिक पूजा जिसे अन्तर्याग कहते हैं, साधक इसमें एकनिष्ठ हो जाता है। अब उसे बाहर में इष्ट देवता का पूजन गौण हो जाता है और पूजा में समर्पण की जानेवाली सभी सामग्री हृदयस्थित देवता को मानसिक कल्पना के द्वारा समर्पण करता है। यही द्वैताद्वैत—भेदाभेद की स्थिति है। इस स्थिति में लौकिक वैभव की कामनाओं के प्रलोभन में न पड़कर उस परमतत्त्व की प्राप्ति के लिये जागरूक होकर दृढ़ निष्ठा, अदम्य उत्साह से अनवरत अभ्यास से भावना-दार्ढ्यकी स्थिति को प्राप्त कर लेता है और इसी समय कुण्डलिनी के जागरण का अनुभव एवं षट्चक्र-भेदन होता है तथा आज्ञाचक्रस्थित तृतीय नेत्र खुल जाता है। अब मन्त्र-साधक '**शिवोऽहं**' की भावना से भावित हो जाता

है और उसमें अन्तःकरण तदाकाराकारित होकर सर्वज्ञत्व और सर्वकर्तृत्व आदि लक्षण प्रस्फुटित हो लगते हैं, इसी को शिवत्व-प्राप्ति कहते हैं, जैसा कि इस सूत्र में वर्णित है **'शिवतुल्यो जायते'**। यही सिद्धावस्था है, इसे ही अद्वैतसिद्धि या अभेदभाव कहते हैं।

स्वच्छन्द तन्त्र, मृगेन्द्रागम, मालिनीविजयोत्तर, त्रैपुरसिद्धान्त, शिवसूत्र, शक्तिसूत्र, त्रिकमत, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन आदि ग्रन्थों में इसके विभिन्न रूप—मन्त्र, मन्त्रेश्वर, मन्त्रमहेश्वर; पशुप्रमाता, प्रमाता, पतिप्रमाता; चित्त, चिति, चैतन्य; सकल, विज्ञानाकल, प्रलयाकल; नर, शक्ति, शिव; इदन्ता, अहन्ता, पूर्णाहन्ता; आणव, शाक्त, शाम्भव आदि मन्त्रयोग की त्रिपुटी के सूक्ष्म-सूक्ष्मतम रहस्यों का विस्तृत विवेचन समुपलब्ध होता है। इन समस्त तन्त्रशास्त्रों का लक्ष्य एक ही है। केवल साधना-सरणि में कुछ प्रकारान्तर परिलक्षित होता है। कुछ तन्त्रों में विस्तार और कुछ में सामान्य संग्रह है, इसलिये एक तन्त्र की पद्धति का आश्रय लेकर साधना करने से अन्य तन्त्रों में विहित जो क्रियाएँ ह, वे भी समस्त पूर्ण हो जाती हैं। गुरुबोधित मार्ग ही सर्वथा अनुकरणीय है—

क्वचित्तन्त्रेषु विस्तारः क्वचित्तन्त्रेषु संग्रहः ।
एकं तन्त्रं समाश्रित्य सम्यक् कर्मकृतं तथा ।।
सर्वं तेन कृतं राम एतच्च गुरुमार्गतः ।

(त्रिपुरारहस्य)

मन्त्र-साधना की अनुभूतिपूर्वक इस क्रमिक विकास से इसी जन्म में ही जीवन्मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

स पश्यन् सततं युक्तो जीवन्मुक्तो न संशयः ।

(स्पन्दका.)

'चिदानन्दलाभे देहादिषु चैत्यमानेष्वपि चिदैकात्म्यप्रतिपत्तिदार्ढ्यं जीवन्मुक्तिः'। इस प्रकार से परात्रिंशिकाशक्तिसूत्र आदि ग्रन्थों में जीवन्मुक्ति का विशेषरूप से वणर्न है, क्योंकि तन्त्र-आगमों में जीवन्मुक्ति मोक्षरूप में मानी गयी है।

मन्त्रयोग का परम आदर्श

करुणामयी, कल्याणमयी पराम्बा भगवती श्रीजगतजननी श्रीललिता त्रिपुरसुन्दरी के जीवों के आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता, दरिद्रता आदि दुःख को दूर करने के लिये प्रार्थना करने पर समस्त विद्याओं के अधिपति, सम्पूर्ण प्राणियों के स्वामी भगवान् परमशिव ने तन्त्र-आगमशास्त्र को प्रकट किया, इसमें मन्त्रशक्ति की प्रधानता है। इसके द्वारा साधक अपने वाञ्छित कामनाओं को स्वल्प-काल में ही प्राप्त कर सकता है।

वैदिक याग और उपनिषदों की विद्याओं के साथ तान्त्रिक याग एवं विद्याओं की समानता परिलक्षित होती है। केवल प्रक्रियागत भेद ही भासित होता है। मूलतः कोई भेद नहीं है। विशेषकर कलियुग में तन्त्र-विधानानुसार साधना करने से शीघ्र

सिद्धि होती है। इन तन्त्र-शास्त्रों में वाम और दक्षिण दो मार्ग हैं। साममार्ग में पञ्चमकारों का विधान है। इसका कोई धीर-वीर इन्द्रियों पर संयम रखनेवाला ही अधिकारी होता है। किञ्चित् भी असावधानी होने से पतन हो जाता है। सिद्धियों के प्रलोभन से इस मार्ग में प्रवृत्त होना भय प्रद है। दक्षिणमार्ग निर्भय एवं निष्कण्टक है। भगवान् आद्य शंकराचार्य ने भी दक्षिण मार्ग का ही समर्थन करके 'सौन्दर्यलहरी', 'प्रपञ्चसारतत्त्व' आदि ग्रन्थों की रचना की है और वर्तमान में तन्त्र-मार्ग में शांकर सम्प्रदाय ही अविच्छिन्न-रूप से चला आ रहा है। उच्चकोटि के तन्त्रविदों का प्रधान उद्देश्य अद्वैत-तत्त्व की प्राप्ति ही है। अद्वैत-सिद्धि मन्त्रयोग से शीघ्र प्राप्त होती है, इसीलिये अद्वैतमत के आचार्य शंकर ने इसका प्रचार-प्रसार किया। श्रीमद्भागवत (११।३।४७) में भी लिखा है—

य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः ।
विधिनोपचरेद् देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ।।

'जो शीघ्र हृदय-ग्रन्थि का भेदन चाहता है, वह तान्त्रिक विधि से केशव का अर्चन करे। 'केशव' शब्द यहाँ पर उपलक्षण है। शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश आदि देवताओं का भी पूजन विहित है।

वर्तमान में प्रचलित प्रायः सभी यज्ञानुष्ठान-पद्धतियाँ तन्त्रशास्त्र से अनुप्राणित हैं। तन्त्रों में स्त्री, शूद्र आदि भी साधना के अधिकारी माने गये हैं। इसमें जाति और धर्म पर विशेष ध्यान

नहीं दिया गया है। साधना की प्रवृत्ति वाले सभी समुदाय के लोगों के लिये इसका द्वार खुला है। स्त्री जाति के लिये तो विशेष सुविधा प्रदान की गयी है। साधना में सरलता एवं अनुभूति होना तन्त्रशास्त्र की अपनी विशेषता है। मन्त्रयोग के साधकों का जीवन मन्त्रमय हो जाता है। सभी कार्य उनके मन्त्रपूर्वक होते हैं। इससे शनैः शनैः साधक में दिव्य गुणों का संचार होने लगता है। पाशविक प्रवृत्तियाँ नष्ट होने लगती हैं। सदाचार और सद्विचार के द्वारा आनन्दमय आदर्श जीवन-यात्रा सम्पन्न होती है।

श्रीललिता नीराजनम्

जय जय जय ललिते

जय जगदीश्वरि मातः श्रीसुन्दरी ललिते,

त्वं माम् पालय नित्यं विश्वेश्वरि वरदे।

मञ्जुल मङ्गलदायिनि परमानन्द प्रदे,

सकलमनोरथ पूरिणि मातः श्री ललिते।।

जय जय जय ललिते

जय श्रीचक्रनिवासिनि कामेश्वरि त्रिपुरे,

दीनं मामवलोकय कृपया श्रीललिते।

शिववामाङ्क-विहारिणी मोहित भूतपते,

कलित-कलाधरमुकुटे नेत्र-त्रय-शोभे।।

जय जय जय ललिते

धनुरङ्कुशशरपाशैः शोभित-कर-कमले,

शिशुं स्वकीयं पालय मातः श्रीललिते।

अरुण-विभा-भव-भासित-भुवनेश्वरि विद्ये,

भव-भय-भञ्जनकारिणि भवनाटकनिपुणे।।

जय जय जय ललिते

विधिहरिसुरपतिमुकुटैः वन्दितपदपद्मे,
नीराजनमवलोकय भगवति चितिरूपे।
संवित्त्व-स्वरूपिणि निगमागमगीते,
संतत-चिन्तित-सञ्चित्-स्वानन्दे ललिते॥
जय जय जय ललिते

विन्दुनाद-भवभासिनि शिवशक्तिप्रथिते,
स्पन्दसुधारस-वर्णिणि शाम्भवि शक्ति शिवे।
नीराजनमिदममलम् आरात्रिक-समये,
भक्त्या गायति सकलं भद्रं संचिनुते॥
जय जय जय ललिते

नृत्यति गायति कलयति मुदितमना मनुते,
रूपं पश्यति त्वरितं तव ललितं ललिते।
निरुपाधिक-कामेश्वर-कामेश्वरि ललिते,
अरुणिम तरुणि-मण्डल मण्डित श्रीसदने॥
जय जय जय ललिते

निष्कल-तत्त्व-प्रकाशिनि परमेश्वरि ललिते,
दत्तात्रेयानन्दं नाथय श्रीललिते।
चरणसरोजे नमितं लोकय श्रीललिते,
शरणागत-प्रतिपालिनि पालय श्रीललिते॥
जय जय जय ललिते

॥ललितानीराजन सप्तकम् सम्पूर्णम्॥

।।श्री।।

कुण्डली-जागरणम्

जागो जगदाधार मैया । जागो जगदाधार ।
साधो मन के तार मैया । साधो मन के तार ।।
जप तप जोग कछु नहीं जानूँ । सुषुम्मा सूक्ष्म विचार ।।
कुल कुण्डलिनी कुण्डली शिवके । साधं त्रिवलयाकार ।।
विद्युल्लेखा विसतन्तु सम । सुप्त भुजङ्गी प्रकार ।।
दिव्य त्रिकोणे कोटि तड़ित् शशि । आभा भानु हजार ।।
मूल मही बं शं षं सं मां । गणपति मूलाधार ।।
बं भं मं यं रं लं ब्रह्मा । स्वाधिष्ठान विचार ।।
रं मणिपूरे विष्णु माया । अग्नि स्वरूपाकार ।।
डं ढं णं तं थं दं धं नं । पं फं दल विस्तार ।।
कं खं गं घं ङं चं छं जं । झं ञं टं ठं स्फार ।।
द्वादस दल शिव शक्ति विराजे । अनहत नाद अपार ।।
चित्त गगन में चिति शक्ति का । स्पन्दन बारम्बार ।।
हंस सोऽहं मन्त्र स्वरूपी । विद्या मय झङ्कार ।।
अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं । षोडश पत्राकार ।।

लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः । व्योम विशुद्धि विचार।।
हं क्षं हसौः सकलं तूँ साधे । विविध सिद्धि के द्वार ।।
मन्त्र यन्त्र सब तन्त्र तुम्ही हो । आगम निगम विचार ।।
अर्धमात्र रही अन्तर आत्मा । सकल तत्त्व संसार ।।
शुभ ज्योतिर्मय हंस युगल रत । पङ्कज पत्र हजार ।।
गुप्ताक्षर मञ्जुल मणिमण्डप । श्रीगुरु श्वेत शृंगार ।।
परमात्मा गुरुनाथ परम शिव । अभय वरद सन्धार ।।
रक्त शुक्ल प्रभासित सुषमा । महिमा अपरम्पार ।।
शिव वामाङ्के शक्ति विराजे । रक्त बिन्दु बौछार ।।
शिव शक्ति पद पङ्कज बरषे । स्नेह सुधा की धार ।।
अभिषेके षट् चक्र विकासे । शिवमय जय जय कार ।।
अन्तर् मुख आनन्द अश्रुभर । पुलकित करुण पुकार ।।
दत्तात्रेया नन्दनाथ का । नमो नमो शत बार ।।
जागे जगदाधार मैया । साधो मन के तार ।।

श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी

श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी, श्रीविद्या मन्त्रयोग द्वारा भगवती पराम्बा ललितामहात्रिपुरसुन्दरी की उपासना तथा श्रीविद्या परम्परा के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रसार के लिये संस्थापित की गयी है। भारतवर्ष में अपने प्रकार की अद्वितीय यह संस्था स्वामी करपात्री जी महाराज के द्वारा उत्तर भारत में पुनरूज्जीवित की गयी इस परम्परा को अग्रसर करने के लिये प्रतिश्रुत है।

संस्था का भवन

वाराणसी में नगवा क्षेत्र में गंगाजी के सुरम्य तट के निकट ही अत्यन्त प्रशस्त और शान्त स्थल में नवनिर्मित चार मंजिल के भवन में यह आश्रम प्रतिष्ठित है। इसमें दो विशाल सभाकक्ष एवं तेरह कक्ष हैं, जिनमें यज्ञमण्डप, अर्चनकक्ष, ग्रन्थालय, शिक्षा एवं अनुसन्धान प्रकाशन विभाग एवम् अतिथि कक्ष आदि स्थित हैं। भवन की विशाल छत पर साधक सन्ध्योपासन, जप आदि कर सकते हैं। यहाँ से सामने भगवती गङ्गा और काशी के ालयों एवं घाटों का दर्शन होता रहता है। भवन के आस-पास सुरम्य उद्यान एवं विद्यालय जैसी संस्थाएँ जिनसे अनुकूल वातावरण का निर्माण होता है।

श्रीविद्या साधना पीठ के अङ्ग विभाग एवम् गतिविधियाँ

पाँच अङ्गों या साधना पीठ की परिकल्पना विभागों के रूप में की गयी है। यह अङ्ग या विभाग निम्नलिखित हैं—

१. उपासना विभाग,

२. अनुसन्धान एवं शिक्षण विभाग (अध्यापन एवं छात्रावास सहित),

३. प्रकाशन विभाग,

४. ग्रन्थालय,

५. साधकावास एवम् अतिथिकक्ष।

साधना पीठ में निगमागम शास्त्रों द्वारा विहित उपासना यथाविधि नियमित रूप से सम्पन्न होती है। दीक्षित साधक-साधिकायें पारम्परिक आचार्य के निर्देशन में यह साधना सम्पन्न कर रहे हैं।

शिक्षण विभाग में छात्रों को सुयोग्य विद्वानों द्वारा शास्त्र का अध्ययन कराया जाता है और उन्हें आगमों का सामान्य रूप से तथा श्रीविद्या का विशेष रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है।

प्रकाशन विभाग द्वारा श्रीविद्या के अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन किया गया है, जिनमें श्रीविद्यारत्नाकर, श्रीविद्यावरिवस्या, भुवनेश्वरीवरिवस्या एवं गणपतिवरिवस्या प्रमुख हैं। कई आगम शास्त्र के दार्शिक ग्रन्थों का भी हिन्दी अनुवाद किया है जो सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ।

साधनापीठ में आगम के ग्रन्थों का एक पुस्तकालय भी स्थापित किया गया जो निरन्तर बढ़ रहा है। आशा है, आगामी वर्षों में इसमें आगम पर देश और विदेशों में प्रकाशित विपुल

सामग्री उपलब्ध करा दी जायगी तथा आगम-तन्त्र की पाण्डुलिपियों का सङ्ग्रह आरम्भ कर एक पाण्डुलिपि सङ्ग्रहालय स्थापित कर अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन भी आरम्भ किया जायेगा।

साधना पीठ एवं अथितिगृह में देश-विदेश के साधक-साधिका एवं आगन्तुक अतिथियों के आवश्यकतानुसार रहने की भी व्यवस्था है। इस प्रकार साधनापीठ जो कि एक विधिवत् पंजीकृत संस्था है, सक्रिय है और महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है।

उपर्युक्त नियमित कार्यक्रमों के अतिरिक्त साधनापीठ में नियमित रूप से श्रीललिता सहस्रार्चन एवं लक्षार्चन सम्पन्न होता रहता है। प्रतिदिन महागणपति यन्त्र की अर्चना होती है एवं पर्वों पर सहस्रमोदकार्चन सम्पन्न होता है। साधनापीठ ने काशी, प्रयाग, बम्बई, कामाख्या, विन्ध्याचल तथा पुनः काशी में विगत सात-आठ वर्षों में श्रीललिता कोट्यर्चन सम्पन्न किया है।

भावी कार्यक्रम

शिक्षण—साधना पीठ में इस समय १० छात्र भोजन एवं आवास की सुविधा के साथ निःशुल्क शिक्षण एवं साधना का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

आगामी वर्ष में यह छात्रसंख्या दूनी कर उपर्युक्त सुविधाओं के साथ ही नियमित छात्रवृत्ति एवं छात्रों की शिक्षा पूरी होने पर उनके नाम जमा की गयी एक निश्चित धनराशि देने का भी प्रावधान किया जायगा; ताकि शिक्षा की समाप्ति होने पर उन्हें

भावी जीवन आरम्भ करने के लिये कुछ आवश्यक वित्तीय साहाय्य उपलब्ध हो सके।

अनुसन्धान एवं प्रकाशन—साधना पीठ अपने अनुसन्धान एवं प्रकाशन के कार्यक्रम का विस्तार करेगा और श्रीविद्या के विभिन्न क्षेत्रों में तथा सामान्यत: आगमों पर व्यवस्थित रूप से अनुसन्धान कार्य किया जा सकेगा ताकि श्रीविद्या के रहस्य को प्रमाणिक रूप और शास्त्रविहित मर्य्यादा में प्रकाशित किया जा सके।

साधना—साधना के क्षेत्र में भी देश और विदेश के जिज्ञासु साधकों को समुचित निर्देश और प्रशिक्षण प्रदान करने के लिये आवश्यक तन्त्र का विस्तार किया जायगा। सौभाग्य से श्रीविद्यासाधना पीठ में आचार्य दत्तात्रेयानन्दनाथजी महाराज का सतत अनुग्रह और मार्गदर्शन उपलब्ध है। जन सामान्य इससे अधिकाधिक लाभान्वित हो—साधना पीठ ऐसी व्यवस्था बढ़ायेगा।

संस्था की वर्तमान संरचना

श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी विधिवत्, पंजीकृत न्यास के द्वारा संचालित संस्था है, जिसका नियमानुसार आय-व्यय रखकर संचालन एक विधिवत् गठित न्यासी मण्डल द्वारा किया जाता है।

प्रो. कमलेशदत्त त्रिपाठी
सचिव
श्रीविद्या साधना पीठ, वाराणसी